डुग्गर की समृद्ध लोककला : मिट्टी का शिल्प

-डॉ० सत्यपाल श्रीवत्स

यद्यपि हमारे विशाल भारत देश की बड़ी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है, जो मुख्य रूप से तो अपना सामाजिक रूप लिए हुए है, परन्तु हमारे देश के विभिन्न प्रदेशों की अपनी निजी भौगोलिक एवं प्राकृतिक अवस्था, खान-पान, वेश-भूषा और बोलियों तथा भाषाओं में भी भिन्नता होने के कारण उनकी लोक सांस्कृतिक तथा शिष्ट-सांस्कृतिक विरासतें अनेक रूप लेकर हमारे सामने आती हैं। यह एक ऐसी स्वाभाविक प्रक्रिया है, जिसे कोई भी नकारने के लिए चुनौती नहीं दे सकता, परन्तु यह तथ्य भी स्पष्ट कर देना नितांत आवश्यक है कि उन सभी प्रादेशिक लोक एवं शिष्ट सांस्कृतिक विरसों के रूपों में एक ही आत्मा अनुप्राणित होती हुई उन्हें जीवंत एवं अमर रखे हुए है और वह है अमर भारतीय संस्कृति जिसे हम सनातन धर्म वैदिक-संस्कृति भी कहते हैं। इसके सामाजिक रूप की आत्मा ही भिन्न-भिन्न प्रादेशिक संस्कृतियों में विद्यमान है। इस प्रकार इसका अनेकता में एकता (unity in diversity) वाला रूप ही सम्पूर्ण भारत देश को एक सूत्र में पिरोए रखने का दावा करता है।

लोक-संस्कृति और शिष्ट-संस्कृतिं, इन दो रूपों में चलती हुई हमारी सांस्कृतिक विरासत की धारा अनादिकाल से निरन्तर प्रवाहमयी है। क्योंकि अमर है, अतएव उसने भूतकाल में उनके क्रूर झंझावातों एवं विदेशी आक्रान्ताओं के अति क्रूर आघातों को सहन करके भी अपने-आप को जीवित रखा है इतना ही नहीं बल्कि उनकी संस्कृतियों से अनेक अंश लेकर अपने भीतर आत्मसात करके अपने आपको और अधिक समृद्ध भी किया है। हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि हमारी यह अमर संस्कृति भविष्य में भी यथावत् प्रवाहमयी रहती हुई अपने आप को समृद्ध करती रहेगी। इस संदर्भ में डा० इकबाल के इस अमर कथन को यहां उद्धृत करना सर्वथा समीचीन होगा -

"कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी ।
यूनान रोमां मिट गए बाकी रहा निशां हमारा।।

इस परिप्रेक्ष्य में जब हम डुग्गर की लोक-संस्कृति के विशाल विरासत भी शिल्पकलाओं वाले पक्ष पर विचार करते हैं तो हमें यह जानकर आश्चर्य-चकित होकर रह जाना पड़ता है, कि इसके विशाल आयाम में कितनी शिल्पकलाएं अपने विभिन्न रूपों में विद्यमान रहती हमारी लोक-संस्कृति की अमर विरासत की परंपरा को इस परिवर्तनशील युग के झंझावाती थपेड़ों को सहन करके भी जीवंत है। यह निश्चय ही हमारे लिए गर्व की बात है। डुग्गर के विभिन्न व्यवसायों में विद्यमान लोक-कलाओं के प्रत्येक रूप में मौलिकता, सूक्ष्म स्पंदनात्यक संवेदना में अत्यन्त आकर्षक परन्तु भोला-भाला सौन्दर्य ही देखने को मिलता है।

हमारे लिए यह भी गर्व का विषय है कि सुदूर प्राचीन काल में डुग्गर के लोक-मानस ने अपनी विभिन्न आवश्यकताओं के अनुरूप जिस प्रकार विभिन्न लोक-शिल्प कलाओं को अपनी मौलिक उद्भावनाओं से साकार रूप देकर समाज के समक्ष प्रस्तुत किया उससे हमारा अतुलनीय उपकार हुआ है। उसके लिए डुग्गर समाज उन पूर्वजों का सदा ऋणी एवं आभारी रहेगा। लोक-वार्ता की सांस्कृतिक विरासत में अन्यतम परन्तु महत्त्वपूर्ण है मिट्टी के शिल्प की कला। डुग्गर की समृद्ध लोक-कलाओं की विरासत में जितनी वैविध्यपूर्ण मिट्टी की शिल्पकला है, उतनी अन्य कोई भी शिल्पकला नहीं है। आश्चर्य होता है हस्तकला के शिल्पी कुम्हारों की कल्पना शक्ति पर जो इस कला के माध्यम से मिट्टी के अनेक रूप - अनेक प्रकार के बर्तन, खिलौने, देवमूर्तियां तथा अन्य कई दैनिक उपयोग के उपकरण आदि तैयार करके डुग्गर समाज के लिए प्रस्तुत करते हैं। यद्यपि यह उनकी रोजी-रोटी का साधन रूप व्यवसाय है, परन्तु इससे क्योंकि वे अपने इस व्यवसाय में अपनी कला की गरिमा को यथावत् बनाए और बचाए रखने में किसी भी प्रकार के आधुनिक युग के दुष्प्रभाव से समझौता करने वाले नहीं हैं, अत: वे हमारे साधुवाद के पात्र हैं। और मज़े की बात यह कि उनके द्वारा बनाए कुछ बर्तन तथा अन्य वस्तुओं की इस आधुनिक सभ्यता में रचे-पचे समाज को आज भी उतनी ही आवश्यकता है जितनी पिछली-शताब्दियों के लोगों को थी।

वस्तुत: मिट्टी का यह लोक-शिल्प हमारे सामने इन दो रूपों में आता है-(1) व्यवसायात्मक मिट्टी का लोक-शिल्प (लोक-शिल्पकला) और (2) निजी या अव्यवसायात्मक (घरेलू) मिट्टी का लोक-शिल्प (लोक-शिल्पकला)।

व्यवसाय के रूप में चलने वाली मिट्टी की शिल्पकला डुग्गर प्रदेश में हज़ारों परिवारों का भरण-पोषण का साधन है। इस शिल्पकला को व्यवसाय के रूप में चलाने वाले कुम्हार कहलातें हैं। कुम्हार हमारे समाज में पिछड़ी जातिओं के वर्ग में गिने जाते हैं। क्योंकि 'कुम्हार शब्द' संस्कृत भाषा के 'कुम्भकार' शब्द से विकसित हुआ है, अत: यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि हस लोक-शिल्पकला की परंपरा का आरम्भ सुदूर अतीत काल में तब हुआ होगा जब संस्कृत भाषा या तो जनसाधारण की बोलचाल की भाषा रही होगी या यदि ऐसा नहीं तो वह सरकारी कामकाज और पठित समाज की भाषा तो अवश्य रही होगी। अन्त: और बाहय-साक्ष्यों के आधार पर यह तथ्य प्रमाणित भी हो चुका है। ऐसी स्थिति में उस समय 'कुम्भकार' शब्द का प्रयोग मृत्तिका शिल्पकला का व्यवसाय करने वालों के लिए ही किया जाता होगा, ऐसा निश्चित रूप से कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए। इस सन्दर्भ में इस शब्द की व्युत्पति ही स्वत: प्रमाण है, जो इस प्रकार है = कुम्भं (घटं)+ करोति = निर्माति इति कुम्भकार अर्थात् जो व्यक्ति 'कुम्भ' (घड़े) का निर्माण करता है, वह कुम्भकार कहलाता है। परन्तु इस व्यवसाय का शिल्पी जो मिट्टी के केवल घड़े ही नहीं बनाता है, बल्कि और भी अनेक प्रकार के बड़े-छोटे बर्तन तथा अनेक प्रकार का समान बनाता है, उसे केवल कुम्भकार के रूप में ही अभिहित करना कहां तक संगत है? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि यह ठीक है कि कुम्भकार (कुम्हार) घड़े के अतिरिक्त भी मिट्टी से अनेक प्रकार के बड़े तथा छोटे बर्तन, बच्चों के खिलौने तथा देव मूर्तियां एवं और भी अनेक प्रकार का सामान तैयार करता, परन्तु उसे केवल कुम्भकार नाम से ही अभिहित करना तो प्रतीकात्मक है।

क्योंकि कुम्हार अपने हाथ में लिए हुए गीली मिट्टी के पिण्ड जब अपने चाक (चक्र) पर रखकर उसे (चक्र को) घुमाता है तो उस समय उसके मन-बुद्धि में जैसी धारणा या कल्पना उभरती है उसी के अनुरूप वह मृतिका-पिण्ड उस के हाथों की कलात्मक सक्रियता से अपने रूपाकार को अपना लेता है। वह रूप चाहे बर्तन हों, चाहे हाथी, घोड़ा आदि खिलौने का ही अथवा राम, कृष्ण, तथा हनुमान आदि किसी दैवी शक्ति का हो।

इस दृष्टि से जब हम विचार करते हैं तो यह तथ्य स्वत: स्वीकार हो

जाता है कि वस्तुत: कुम्हार की भूमिका एक सर्जक की भूमिका होती है। इस से तो उसे समाज में बहुत आदर दिया जाना चाहिए।

परन्तु प्राय: ऐसा होता नहीं है। फिर भी ये भोले-भाले कुम्हार जाति के लोग अपने आदर-मान की परवाह किये बगैर अपने व्यवसाय में किसी भी प्रकार की कोताही नहीं करते हैं। अपनी शिल्पकला को यथावत् अक्षुण्ण बनाए रखने के प्रति ये लोग पूर्णतया सजग तथा ईमानदार रहते हुए मिट्टी से अपना अनेक प्रकार का सामान तैयार करते रहते हैं। इनकी हम इस बात के लिए प्रशंसा करते हैं कि जहां केवल धन कमाने की होड़ जैसे कई अन्य लोक-व्यवसायिकों ने अपनी वस्तुओं का स्तर गिरा दिया है, वहां इन कुम्हारों ने ऐसा बिल्कुल नहीं किया है। वास्तव में ये लोग अपने व्यवसाय में कोताही कर भी नहीं सकते क्योंकि मृत्तिका-शिल्पकला का काम ही ऐसा होता है जो हमेशा समर्पण और ईमानदारी की ही अपेक्षा करता है। इसके अतिरिक्त यह काम भी अपेक्षाकृत कठिन है, क्योंकि मृत्तिका पिण्डों को विविध रूपों में मण्डित करके समाज के सामने लाना वास्तव में है भी आश्चर्य भरा चमत्कार। इसीलिए यह भी एक सचाई है कि आज के इस अनेक प्रकार की अधुनातन सुविधाओं वाले इस भौतिकवादी युग में भी इस कुम्हार की भूमिका तथा योगदान की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। अर्थात् उसके द्वारा बनाया गया कोई-न-कोई बर्तन आदि वस्तु हमें कभी-न-कभी अवश्य खरीदनी ही पड़ती है, क्योंकि उसके बिना हमारा धार्मिक कृत्य आदि अधूरा रह सकता है। अत: स्पष्ट है कि कुम्हार की भूमिका हमारे समाज के लिए अत्यन्त अपरिहार्य है, विशेषकर डुग्गर प्रदेश का ग्रमीण समाज तो कुम्हारों द्वारा बनाए सामान के बिना पंगु ही हो सकता है।

जैसे पहले कहा है कि डुग्गर प्रदेश में मृत्तिका-शिल्पकला के ये दो रूप हैं- (1) व्यवसायात्मक (2)अव्यवसायात्मक। व्यवसायात्मक शिल्पकला कुम्हारों की जीविका का साधन है जबकि अव्यवसायात्मक का उपयोग गाँव के लोगों विशेषकर गाँवों की महिलाएं अपनी निजी घरेलु आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु करतीं हैं।

विवरण:- कुम्हारों की शिल्पकला और उसके प्रकार-(व्यवसायात्मक) कुम्हारों की मृत्तिका-शिल्पकला को हम मुख्य रूप से इन छ: भागों में विभक्त कर सकते है:-

(1) स्थूलाकार के बर्तन भेदों सहित।

(2) मध्याकार के बर्तन भेदों सहित।

(3) साधारण लघु आकार के बर्तन भेदों सहित।

(4) अति लघु आकार के बर्तन आदि।

(5) बच्चों के बड़े तथा छोटे खिलौने।

(6) देवी-देवताओं की बड़ी-छोटी मूर्तियां।

यहां इन सभी प्रकार के भेदों-उपभेदों का विस्तृत विवरण देने से पहले कुम्हारों द्वारा अपने शिल्प के लिए उपयोग में लाई जाने वाली मिट्टी तथा अन्य उपकरणों के बारे में विस्तृत जानकारी देनी उपयुक्त होगी:-

उपकरण - विवरण :-

(i) मिट्टी -

यद्यपि मिट्टी कुम्हार के उपकरणों में प्रत्यक्षत: नहीं आती है, परन्तु तो भी अप्रत्यक्ष रूप से हम इसे उपकरण कह सकते हैं, अन्यथा यह क्योंकि कुम्हारों द्वारा बनाये जाने वाले 'घट' आदि के लिए सर्व प्रमुख भूमिका निभाती है। अत: इसके बारे में सर्वप्रथम कहना उपयुक्त होगा।

कुम्हारों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली मिट्टी विशेष प्रकार की होती है और विशेष विधि से मसल-मसलकर तथा साफ करके तैयार की जाती है। उस मिट्टी की पहचान भी केवल कुम्हार लोग ही कर सकते हैं, चाहे उन लोगों को उसकी खोज के लिए बहुत दूर भी क्यों न जाना पड़े एवं उसका खनन करने के लिए कितनी गहराई में क्यों न जाना पड़े। यह मिट्टी लाल रंग की एवं चिकनाई लिए होती है।

(ii) कंडा -

यह लगभग आधा फुट लम्बाई वाला खूंटी के आकार का उपकरण होता है। विशेष प्रकार से निर्मित लकड़ी के आधार पर स्थापित किया हुआ होता है, जिसे एक स्थान से दूसरे स्थान पर बड़ी आसानी से स्थानान्तरित किया जा सकता है। इसी पर कुम्हार अपनी लकड़ी से निर्मित चाक (चक्क) को रख कर तथा फिर उस पर गीली मिट्टी के पिण्ड को रखने के साथ जब चाक को

चलाकर जिसे चलाकड़ 'चुह्ग्गा'[1] भी कहते हैं की सहायता से घुमाता है तो उसकी सृजन क्रिया आरम्भ हो जाती है।

(iii) चक्क (चाक-चक्र (सं) :-

इस उपकरण के सब से अधिक महत्त्वपूर्ण होने के कारण यदि इसे कुम्हार का दायां हाथ कहा जाए तो भी अतियुक्ति नहीं होगी। कंडे के ऊपर चाक या चक्र को व्यवस्थित करके जब कुम्हार उस पर ठीक प्रकार से मल-मलकर सुधारी हुई मिट्टी के पिण्ड को रखते ही इसे अपने चलाकड़ (चुह्ग्गे) नामक डण्डे से घुमाता है, वास्तव में तभी कुम्हार अपनी शिल्पकला को सक्रिय करके अपनी कल्पना शक्ति का उपयोग करता हुआ 'घट' (घड़ा) आदि पात्रों का सृजन या निर्माण आरम्भ करता है। जब वह चलाकड़ से उसे तेज गति से घुमाता है और इस पर रखे हुए मिट्टी के पिण्ड को यथाभीष्ट घट, पात्र(बड़ा-छोटा) तथा अन्य किसी वस्तु या उपकरण का रूप देता चलता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसका चाक (चक्र) बिजली से चलने वाली एक मशीन है, और उस पर कार्य करने वाला एक सुशिक्षित वैज्ञानिक है जो अद्भुत आविष्कार करने में कुशल है। अपने चाक (चक्र) पर गोलाकार मृत्तिका पिण्ड रखने के बाद जब वह उसे (चक्र) चलाकड़ द्वारा चलाने के साथ-साथ अपने दोनों हाथों से उस पिण्ड को सहलाने लगता है तो उस समय उसके मन-बुद्धि में जैसी कल्पना उभरती है उसी के अनुरूप वह मृत्तिका पिण्ड उसके हाथों की कलात्मक सक्रियता से अपने रूप को प्राप्त कर लेता है। वह रूप चाहे किसी बर्तन का हो चाहे हाथी, घोड़ा आदि खिलौने का या फिर किसी देवी-देवता का हो। इस दृष्टि से जब हम गम्भीरता से सोचें तो यह तथ्य स्वत: स्वीकार हो जाता है कि कुम्हार की भूमिका एक सर्जक की भूमिका होती है।

(iv) टिक्क -

यह मिट्टी से निर्मित एक गोलाकार उपकरण होता है। घड़ा (घट) आदि का निर्माण करने के बाद कुम्हार थोड़े समय के लिए उसे इस पर रखता है।

(v) चलाकड़ -

जैसे कि ऊपर स्पष्ट कर ही दिया है कि चलाकड़ (चुह्ग्गा) डण्डे के

1. जम्मू के समीपवर्ती गांवों में कुम्हार चलाकड़ को चुह्ग्गा कहते हैं।

आकार का वह उपकरण है जिसकी सहायता से कुम्हार अपने चाक (चक्र) को चलाकर गतिशील बनाता है। यह एक अनिवार्य तथ्य है कि यदि यह न हो तो कुम्हार को अपना चाक चलाने के लिए अत्यन्त कठिनाई का सामना करना पड़ सकता है। भले ही वह अपने चक्र को अपने हाथों से चला भी ले परन्तु उसे वांछित गति हाथों से दी ही नहीं जा सकती। वह गति चलाकड़ ही दे सकता है, जो कुम्हार की अभीष्ट शिल्पकला की सम्पन्नता के लिए अनिवार्य होती है।

(vi) थथ्थू -

यह भी कुम्हार का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण उपकरण है। जब कुम्हार चाक पर घड़ा आदि कोई बर्तन तैयार करते हैं तो उसमें यद्यपि अभीष्ट आकार भले ही बन जाता है, परन्तु फिर भी उसके कई भागों में यथेष्ट समता या सौन्दर्य का अभाव ही रह जाता है। उसी को वास्तविक आकार या समता में लाने के लिए इस उपकरण (थथ्थू) का उपयोग किया जाता है, थथ्थू की सहायता लेने से पहले बर्तन को कुछ समय के लिए धूप में रखकर थोड़ा सुखा लिया जाता है।

सन्त कवि कबीर ने कुम्हार की इस प्रक्रिया को प्रतीकात्मक रूप में लेते हुए गुरु को कुम्हार का प्रतीक और शिष्य को कुम्भ (घट) का प्रतीक मानकर इस पद की रचना की है-

गुरु कुम्हार शिष कुम्भ है।
घड़-घड़ काड्ढे खोट?
अन्तर हाथ सहार दे बाहर मारे चोट।

(vii) अथरी -

यह उपकरण भी कुम्हार को सद्य: निर्मित घड़े आदि को भीतर से समता लाने के लिए सहायता करता है। कुम्हार इसे बाएं हाथ में लेकर घड़े आदि के भीतर अपना हाथ डालकर ऐसे थामे रखता है ताकि कहीं वह गलती या अपेक्षा से थथ्थू के द्वारा बाहर से इतनी बड़ी चोट न मार दे कि वह टूटने की स्थिति में आ जाए। अत: यह थथ्थू द्वारा अपना काम करने पर उसकी सहायता करता है।

(viii) आवा -

यह कुम्हार का सबसे महत्त्वपूर्ण उपकरण होता है। यदि यह न हो तो

कुम्हार का सारा परिश्रम व्यर्थ सिद्ध हो जाता है क्योंकि यही उसके बर्तनों आदि को पक्का रूप देने में सहायता करता है।

यह यद्यपि तंदूर की आकृति का होता है, परन्तु एक तो इसका आकार बहुत बड़ा होता है, दूसरा इसके निचले भाग में एक सुराखों वाली मिट्टी की परत होती है और आगे की ओर नीचे लकड़ियों का ईंधन डालने के लिए एक फुट वर्गाकार का सुराख होता है। कुम्हार लोग नये बनाए हुए बर्तनों को ठीक प्रकार से थथ्थू आदि उपकरणों से सुधार कर और धूप में सुखाकर आवे में बड़ी तरतीब के साथ पंक्तियों में एक-दूसरे के ऊपर व्यवस्थित करके रखते हैं ताकि वे एक-दूसरे के साथ टकराकर टूट न जाएं। उसके बाद उनके नीचे पर्याप्त ईंधन रखकर आग जलाई जाती है जो नीचे वाली परत के सुराखों से अपनी लपटें निकालकर अपनी तेज ज्वाला से बर्तनों को पकाती है। आग प्राय: एक दिन और एक रात जलती-जलती चौबीस घण्टें या इससे भी अधिक समय के बाद यद्यपि ठण्डी हो जाती है, परन्तु घट आदि बर्तनों को ठण्डा होने में लगभग एक या डेढ़ दिन और भी लग सकते हैं, अत: पूर्णतया ठण्डे होने पर ही आवे से निकालकर उपयोग में लाए जाते हैं।

कुम्हारों द्वारा मृत्तिका शिल्प कला के छ: भागों का विवरण:-

(1) स्थूलाकार के बर्तन आदि :-

इस भाग में मट्ट (मटन) आता है। यह दो आकारों का होता है - (i) बड़ा मट्ट (मटन) बड़े मट्ट का आकार बड़ा विशाल होने के कारण उसका मुख भाग भी बड़ा होता है। इसके इतने आकार के कारण ही इसमें एक साधारण आकार का व्यक्ति भी आसानी से छुप सकता है। इसे बनाने के लिए कुम्हारों को अपेक्षाकृत अधिक परिश्रम एवं सावधानी रखनी पड़ती है क्योंकि इसका आकार बहुत बड़ा होता है। प्राचीन काल में या आज से सौ वर्ष पहले छोटे नगरों में पानी का संचय करने के लिए इसकी बड़ी आवश्यकता होती थी क्योंकि छोटे नगरों और गांवों में नल नहीं होते थे।

यह मट्ट आकार में लम्बा होता था। इसका मुख चौड़ा होता था और नीचे वाला तलभाग कोणाकार इसलिए होता था ताकि इसे किसी वृक्ष के नीचे ठंडे स्थान पर एक फुट का गड्डा खोद कर व्यवस्थित किया जा सके। इसके मुख भाग से आगे वाला भाग, जिसे मध्य वाला भाग भी कहा जा सकता है,

आवश्यक चौड़ाई लिए हुए होता था। यह खेद का विषय है कि वर्तमान समय में न ही इसकी पहले की तरह आवश्यकता ही समझी जा रही है और न ही इस आकार के मट्ट को बनाने वाले शिल्पी कुम्हार भी उपलब्ध हैं।

(ii) दितीय श्रेणी का मट्ट (मटन) -

इस श्रेणी वाला मट्ट (मटन) भी यद्यपि आकार-प्रकार में बड़ा ही होता है, परन्तु आकार (i) से किचिंत भिन्न और छोटा भी होता है। यह मट्ट पहले के समान नीचे की ओर गोल लम्बा न होकर किचिंत नीचे की ओर झुकाव लिए हुए मध्य भाग से गोलाकार का होता है। इस का मुख चौड़ाई लिए होता है। इसके स्थायित्व को ध्यान में रखते हुए इसे पर्याप्त मिट्टी से बनाकर कभी-कभी आवश्यकता से अधिक भारी बना दिया जाता है। इस मट्ट का निर्माण करने वाले कुम्हार कहीं-कहीं पर अब भी मिल जाते हैं, क्योंकि इस मट्ट की ग्राहकता गाँवों में अब भी विद्यमान है। इसका उपयोग पानी की छबीलों में पानी संचित करने के लिए भी किया जाता है क्योंकि इस में आठ से दस घड़ों का पानी जमा किया जा सकता है।

(i) बड़ा मट्ट (मटन):-

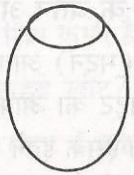

(ii) द्वितीय श्रेणी का बड़ा मट्ट (मटन):-

विशेष - इस मट्ट की तहें इतनी मोटी होती हैं इसे तोड़ना यदि असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य होता है।

(2) मध्याकार के मिट्टी के बर्तन आदि:-

इस श्रेणी में ये बर्तन गिनाए जा सकते हैं,-

(क) *घड़ा* (ख) झज्जर (ग) कुंड्डा (घ) परात (ङ) *पतीला*

(क) घड़ा:-

यह तीन प्रकार का होता है - (1) बड़ा (2) किंचित छोटा घड़ा तथा (3) बहुत छोटा घड़ा (घड़ू)

(1) बड़े घड़े में पानी पर्याप्त मात्रा में भरा जा सकता है और इसे भरकर केवल बलवान पुरुष या बलवती महिला ही स्वयं उठा सकती है अन्यथा इसे दूसरे की सहायता से ही उठाने में आसानी होती है। इसे डुग्गर के कई गाँवों में मट्ट भी कहते हैं। इसका मध्य भाग गोलाई युक्त एवं धारीधार होता है।

(2) इस घड़े को पानी से भरकर साधारण बलशाली महिला एवं पुरुष आसानी से उठा सकते हैं।

इन घड़ों को बनाने के लिए क्रमश: मिट्टी की पर्याप्त और किंचित कम मात्रा उपयोग में लाई जाती है।

इन दोनों श्रेणियों के घड़ों की आकृति लगभग एक जैसी होती है, आकार भले ही बड़ा क्रमश: छोटा होता है। बड़े घड़े में दो से तीन कभी $3\frac{1}{2}$ बाल्टियाँ तक पानी भरा जा सकता है जबकि छोटे घड़े में पानी की मात्रा की कमी रहती है

(3) घड़े की यह श्रेणी बहुत छोटी होती है, इसलिए इस आकार के घड़े को डुग्गर में घड़ु कहकर पुकारते हैं। इसे आठ-दस वर्ष का बच्चा भी पानी से भरकर आसानी से उठा संकता है।

इन दोनों प्रकार के घड़ों का मुखभाग इतना छोटा होता है कि उसमें एक हाथ ही आसानी से डाला जा सकता है इनका मध्य भाग चौड़ा-गोल और धारीदार होता है। कुम्हार इस आकार के घड़ो को सुन्दर बनाने के लिए इन के मध्य भाग तक के भाग पर विशेष विधि से बनाए हुए काले रंग से बेल-बूटे और

फूल भी बनाता है। इससे जहां घड़ों में सौन्दर्य आ जाता है वहाँ कुम्हार की शिल्प कला के साथ-साथ उसकी लोक चित्रकला की प्रियता की भी जानकारी होती है:-

(1)

(2)

(3)

(ख) झज्जर:-

पानी भरने के लिए उपयोग में लाए जाने वाले मट्ट और घड़े के बाद झज्जर का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण इसलिए होता है कि एक तो इसे बनाने के लिए कुम्हारों को विशेष प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है, दूसरा इसमें प्रयुक्त मिट्टी आदि सामग्री भी अपेक्षाकृत अधिक एवं विशेष प्रकार की होती है। यह भी तीन प्रकार की होती है (i) बड़ी (ii) छोटी (iii) तथा उससे छोटी।

विवरण:-

झज्जर बनाने के लिए कुम्हार को एक तो मिट्टी में नमक तथा अभरक के समान चमक वाली विशेष मिट्टी मिलाने के साथ-साथ लकड़ी के बने हुए बेल-बूटों वाले उपकरण ठप्पों का प्रयोग करना पड़ता है। झज्जर का मुँह वाला भाग इतना संकीर्ण होता है कि उसमें केवल छोटे बच्चों का हाथ ही प्रविष्ट हो सकता है, बड़े का नहीं। हां, झज्जर का मध्याकार घड़े की अपेक्षा पर्याप्त चौड़ा होता है जबकि नीचे से थोड़ा ढालवां गोल होता है। झज्जर को चाक (चक्क, चक्र) पर तैयार करने के बाद कुम्हार उसे थोड़ा सुखाकर उसके मध्य भाग तक

अपने ठप्पों से जो बेल-बूटे (बिना किसी भी प्रकार के रंग से) भी उकेरता है। वे देखने वालों का मन मोह लेते हैं। घड़े के समान बड़ी झज्जर में पर्याप्त पानी भरा जा सकता है

यह भी एक तथ्य है कि क्योंकि झज्जर घड़े का स्त्रीलिंग रूप है, अत: इस में घड़े की अपेक्षा अधिक सौन्दर्य लाना कुम्हार की महत आकांक्षा होती है। यही कारण है कि वह बनाने-संवारने में अधिक परिश्रम एवं समर्पण भाव से काम लेता है। घड़े के समान तथा अपनी शिल्पकला का चमत्कार भी दिखाता है।

(ii) इसका मध्याकार वाला रूप बड़ी झज्जर से थोड़ा छोटा होता है और तीसरे प्रकार का रूप तो और भी बड़ा ही छोटा होता है। डुग्गर में इस रूप को झज्जरू कह कर पुकारते हैं।

(ग) चाटी

इस रूप का मिट्टी का बर्तन दही बिलोने के लिए तैयार किया जाता है। सामान्यता: देखने में यह यद्यपि लघु आकार का मटन ही प्रतीत होता है, परन्तु फिर भी ध्यान से देखने पर इसकी मटन से भिन्नता स्वत: ही स्पष्ट हो जाती है। लिंग भिन्नता के कारण भी इस में मटन की अपेक्षा अधिक सौन्दर्य होता है। जहाँ मटन में ठोसपन होता है, वहाँ इस में मुलायमपन देखने को मिलता है। मटन का गला भाग से लेकर मध्य भाग तक किंचित ठोस-खुरदरा होता है परन्तु चाटी का यह भाग ऐसा प्रतीत होता है कि मानो उसे पालिश की हुई हो। इसके अतिरिक्त चाटी के गले का ऊपरी भाग भी बड़े कलात्मक ढंग से बनाया होता है।

गाँव में यद्यपि चाटी का उपयोग केवल दही बिलोने के लिए ही किया जाता है, परन्तु यदि किसी के घर गाय या भैंस ब्याही हुई न हो तो चाटी का उपयोग घर में यथावश्यक किसी भी काम के लिए किया जा सकता है। चाटी का मध्याकार वाला रूप थोड़ी मात्रा का दही बिलोने के लिए काम में लाया जाता है।

इन दोनों रूपों का तल-भाग अपेक्षाकृत अधिक स्थूल इसलिए रखा जाता है ताकि दही विलोते समय मथानी की ठोकरों से चाटी को कोई हानि न पहुँचे।

चाटी के साथ मिलती-जुलती आकृति का बर्तन आचार डालने के लिए भी बनाया जाता है।

(घ) कुंडा :-

पीतल की लघु परात के आकार के इस स्थूल बर्तन को दही जमाने के लिए तैयार करने के लिए यद्यपि कुम्हार को विशेष शिल्प का प्रयोग नहीं करना पड़ता है तो भी इसे विशेष ढंग से गूँथी हुई लाल मिट्टी से बनाया जाता है। इसका भीतरी भाग विशेष रूप से मुलायम किया जाता है। न जाने कुम्हार लोग इसे ऐसा करने के लिए मिट्टी में कौन-सी वस्तु मिलाते हैं। यह एक रहस्य है इसका ऊपर वाला भाग निचले भाग से अपेक्षाकृत अधिक चौड़ा होता है।

मिट्टी के ढेले को चाक के ऊपर रखकर जैसे ही कुम्हार उसे चलाकड़ से घुमाने के साथ अपना हाथ उस ढेले पर रखता है तो कुछ ही क्षणों में कुंडा अपने आकार में आ जाता है।

(3) परात :-

यद्यपि आजकल परातें पीतल और एलमोनियम की भी आम उपलब्ध हो ही जाती हैं तो भी कुम्हार लोग गरीबों के लिए इसका निर्माण आज भी करते हैं। यह भी दो प्रकार की होती हैं-(i) बड़ी तथा (ii) मध्यमाकार की।

(4) थाली :-

कुम्हार लोग मिट्टी की थाली भी दो प्रकार की बनाते हैं- (i) बड़ी और (ii) छोटी, वो इसे गरीब या आर्थिक दृष्टि से कमजोर लोगों के लिए तैयार करते हैं।

यद्यपि मिट्टी की थालियां भी धातु की थालियों (कांस्य, पीतल, स्टील आदि) के समान आकर की होती हैं तो भी उनकी अपेक्षा इनके किनारे अपेक्षाकृत किंच्चित् बड़े भी होते हैं और इन में कुछ ठोसपन भी होता है।

(3) साधारण लघु आकार के बर्तन आदि उनके भेदों के साथ-

इस श्रेणी में (i) कराठलू, (ii) दयाहलू (iii) सुराही, (iv) डिब्बा तम्बाकू पीने के लिए, (v) जग्ग, (vi) फूलदान, (vii)प्याला, (viii) कुन्नी, (पतीली) आदि बर्तन रखे जा सकते हैं।

विवरण-

(i) कराठलू :-

यह बर्तन विशेष रूप से दही जमाने के लिए निर्मित किया जाता है, यद्यपि लोग इसे घी के लिए भी तथा अल्प मात्रा में छाछ रखने के लिए भी प्रयुक्त करते हैं।

(ii) दयाहलू :-

इसके नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि इसे भी दही जमाने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। जहां कराठलू में दही अधिक मात्रा में जमाया जा सकता है वहां दयाहलू में दही की मात्रा अपेक्षाकृत अल्प होती है। यदि यह कहा जाए कि दयाहलू कराठलू का ही लघु रूप प्रतीत होता है तो अत्युक्ति नहीं होगी।

(iii) सुराही :-

ग्रीष्म ऋतु में पानी को पर्याप्त ठण्डा रखने के लिए सुराही की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है इसका कारण यह है इसकी मिट्टी में भी नमकादि मिला कर यह झज्जर के समान तैयार की जाती है। क्योंकि इसे विशेष विधि से तैयार किया जाता है, इसलिए इसे बनाने के लिए विशेष प्रशिक्षण की भी आवश्यकता होती है। इसलिए कोई-कोई दक्ष कुम्हार ही इसे तैयार कर सकता है। इसका मुख भाग इतना संकीर्ण होता है कि उसमें छोटे बच्चे का हाथ प्रविष्ट नहीं किया जा सकता है। इसके गले का निचला भाग लगभग अण्डे जैसा होता है, यद्यपि इसे खड़ा रखने के लिए इसका (आधार) भाग गोल होता है। इसके अतिरिक्त इसे उठाने के लिए एक भाग (बायें या दायें) पर एक मिट्टी का कड़ा जैसा लगा दिया जाता है। इसमें पानी की मात्रा बाल्टी के एक चौथाई जितनी होती है।

(iv) डिब्बा :-

इसकी आकृति भी लगभग तम्बाकू पीने वाली झारी के समान होती है, यद्यपि झारी से इसमें-थोड़ा अन्तर अवश्य होता है। जहां डिब्बा झारी के ऊपरि भाग से (गले वाला) मिलता-जुलता होता है वहां मध्य भाग और निचला भाग अलग प्रकार का होता है। गरीब लोग (विशेष कर गुज्जर आदि) डिब्बे के द्वारा ही तम्बाकू पीने का काम लेते हैं।

(v) जग्ग :-

इसकी आकृति लगभग पीतल के जग के समान ही होती है, यद्यपि मिट्टी का होने के कारण यह ठोस आकृति वाला अवश्य होता है।

(vi) फूलदान :-

इसे गमला भी कहते हैं। यह बड़ा साधारण और ठोस आकृति तथा आकार वाला होता है। इसे बनाने के लिए कुम्हार को विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता है। यह ऊपर से चौड़ा और नीचे की ओर क्रमशः संकरा होता जाता है। यह बड़े और छोटे आकार का होता है।

(vii) प्याला - (छन्ना) :-

यह स्टील के डूंगे के आकार का होता है। उसे गरीब लोग अपने दैनिक प्रयोग, बूढ़ों को थूकने के लिए, पक्षियों को पानी पीलाने के लिए तथा कुत्तों को भोजन खिलाने के लिए करते हैं। कभी-कभी यह दो आकृतियों एवं आकारों वाला भी बनाया जाता है।

(viii) कुन्नी (पतीला):-

कुम्हार लोग कुन्नी (पतीला) का निर्माण भी बड़ी विधि एवं परिश्रम से करते हैं। क्योंकि कई लोग इसमें दाल पकाते हैं, अतः इसकी सफाई और पक्केपन का विशेष ध्यान रखा जाता है। इसके गले से नीचे वाले भाग से लेकर आधे भाग तक कभी-कभी पक्का रोगन या रंग भी किया जाता है। हां, इसके नीचे वाले भाग को जान-बूझकर खुरदरा रखा जाता है। इसे पतीला भी इसलिए कहा जाता है कि इस का आकार-प्रकार पीतल के पतीले से मिलता जुलता है।

(4) अति लघु आकार के बर्तन आदि :-

इस श्रेणी में अति लघु आकार के बर्तन आते हैं, जैसे (i) डूंगड़ू (ii) दीपक, (iii) चराग, (iv) डयूण्ड (v) झांवा *(vi)* टोपी *(v)* गुल्लक

विवरणः-

(i) डूंगड़ू :-

इसे भी कुम्हार लोग बड़ी सावधानी से बनाते हैं क्योंकि इसका आकार छोटा होने के कारण टेड़ा हो जाने की आशंका रहती है। इसके साथ-साथ इसके मुंह के आकार का ढक्कन, जिसे डोगरी में चप्पनी कहते हैं, भी बनाया जाता है।

इसका उपयोग घी, हींग आदि रखने के लिए किया जाता है-

यह भी प्रायः दो आकारों का होता है - (1) बड़ा और (2) छोटा

इसके अति छोटे आकार को ही कुज्जू कहा जाता है जो केवल हींग डालने के लिए ही उपयोग में लाया जाता है। इसे घड़ना या बनाना और भी अधिक कठिन होता है। कारण है, इसका अति लघु आकार।

डूंगड़ुओं और कुज्जों का उपयोग डुग्गर प्रदेश में लोग लड़के या लड़कियों के विवाह के समय पहले दिन ग्रहशान्ति के समय तथा करक चतुर्थी के समय भी करते हैं। वस्तुतः इसके नाम के कारण ही उस गणेश चतुर्थी को करक चतुर्थी कहते हैं।

(ii) दीपकः-

इसका उपयोग डुग्गर संभाग में वर्तमान समय में भी दो प्रकार का होता है- (i) किंचित बड़े आकार का और (ii) अति लघु आकार का। बड़े आकार का दीपक प्रायः शिव मंदिरों में, किसी के मर जाने पर, सूतक वाले घरों में दस दिनों तक, तथा किसी भी धार्मिक कृत्य के समय इस्तेमाल होता है। छोटे दीपकों से दीवाली के त्योहार-उत्सव पर दीपमाला की जाती है।

(iii) चरागः- (चिराग)

यह दीपक का ही एक विशेष रूप है। दीपक में एक बत्ती काम करती है जबकि इसमें दो बत्तियां डाल कर उन्हें इसके चारों भागों में बांट कर जलाया जाता है। इसलिए इसे 'चराग' अर्थात् चारों कोनों में व्यवस्थित बत्तियों को अग्नि से प्रज्ज्वलित करने के कारण चराग नाम से पुकारा जाता है।

(iv) डयूण्डः-

दीपक रखने या जलाने के लिए तैयार की जाने वाली यह दो प्रकार की होती है-(1) साधारण (2) विशेष तकनीक या शिल्प विधि से निर्मित। साधारण का आकार ठोस और भद्दा जैसा होता है, जिसे बनाने के लिए कुम्हार को विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता है, इसे केवल इस पर एक ही दीपक रखने के लिए बनाया जाता है, जबकि दूसरे प्रकार की डयूण्ड इस शिल्प विधि से बनाई जाती है, जिसमें दीपक (3-4-तक) साथ-साथ ही जुड़े होते हैं।

(v) झांवा:-

पैरों की मैल उतारने के लिए बनाया जाने वाला झांवा (झाऊ) नामक यह उपकरण भी दो प्रकार का होता है। यद्यपि कुम्हार को इसे बनाने के लिए विशेष परिश्रम नहीं करना पड़ता है। तो भी उसे अपनी शिल्पकला का चमत्कार तो दिखाना ही पड़ता है-

(vi) टोपी:-

यह मिट्टी की टोपी सिर पर पहनने वाली टोपी नहीं, अपितु तम्बाकू पीने वाली टोपी है। यह तीन प्रकार की होती है: (i) झारी पर रखकर (तम्बाकू और आग के साथ) तम्बाकू पीने के लिए। (ii) यह भी यद्यपि उसी काम के लिए प्रयोग में लाई जाती है, परन्तु इसकी आकृति भी प्रथम श्रेणी वाली टोपी से किंचित भिन्न होती है। जहां पहली श्रेणी वाली का मुख भाग चौड़ा होता है वहां दूसरी श्रेणी वाली का मुख किंचित संकरा होता है। तीसरी श्रेणी वाली टोपी को डुग्गर में लोग लम्बी टोपी कहते हैं। यह आकार में लम्बी और पतली होती है और इसका मुख भी रुपये के सिक्के से थोड़ा बड़ा और उसी के समान गोलाई लिए होता है। इस टोपी का प्रयोग झारी के बिना किया जाता है। इसके छोटे आकार के कारण ही लोग इसे अपनी जेब व बैग आदि में रखे रहते हैं और इसके साथ ही एक थैली में थोड़ा-सा तम्बाकू भी रखते हैं। इसे रखने वालों को जब तम्बाकू छीकने की चाह होती है इसे झट निकालकर तथा भरकर और ऊपर आग का एक अंगारा रखकर निचले भाग को कपड़े के एक टुकड़े, से जिसे साफी कहते हैं लपेट लेते हैं। बस उसके बाद वे तम्बाकू के कश लगाते हुए आनन्द लेने लगते हैं।

कुम्हार लोगों को ये टोपियां बनाने में अपनी कला-कुशलता दिखानी ही पड़ती है। अन्यथा यदि इनमें भद्दापन हो तथा बेल-बूटों तथा फूलों को न उकेरा गया हो तो ग्राहक भी आकर्षित नहीं होते है और मनचाहा मूल्य भी नहीं मिल सकता हैं।

(VI) बच्चों के बड़े तथा छोटे खिलौने देवी-देवताओं की अनेक प्रकार की बड़ी तथा छोटी मूर्तियां:-

कुम्हार लोगों में तथा उन से जुड़े लोगों का एक ऐसा वर्ग भी होता है जो केवल बच्चों के अनेक प्रकार के खिलौने तथा देवी-देवताओं की छोटी-बड़ी

मूर्तियां बनाकर बेचते हैं और लगभग इसी व्यवसाय से अपनी आजीविका अर्जित करते हैं। यहां इनका प्रत्येक का विवरण विस्तार भय से नहीं दिया जा रहा है क्योंकि इनमें बहुत वैविध्य है।

निजि (घरेलू) अव्यवसायात्मक मिट्टी के उपकरण:-

गाँवों में महिलाओं के द्वारा निजी उपयोग के लिए अनेक प्रकार के मिट्टी के उपकरण बनाए जाते हैं जो यद्यपि विशेष प्रकार की शिल्पकला का प्रदर्शन नहीं करते, तो भी वे कलापूर्ण तो होते ही हैं।

विवरण:-

(i) चुल्ली :-

गाँवों में चुल्ल[1] का विशेष महत्त्व होता है- क्योंकि आज भी जब गाँवों में भी गैस-चूल्हे पर भोजन पकाने का रिवाज़ बढ़ रहा है तो भी अभी भी 99% गाँवों के लोग आग पर पका हुआ भोजन पसन्द करते हैं। इसलिए उस विधि से भोजन पकाने का प्रमुख आधार चुल्ली या चूल्हा होता है। क्योंकि डुग्गर में चुल्ली और चूल्हे में परस्पर अन्तर होता है, इसलिए उनका यहां विवरण भी अलग-अलग देना उपयुक्त होगा।

चुल्ली जहां भूमि का थोड़ा-सा भाग खोद कर वहां बनाई जाती है, जबकि चूल्हा भूमि के किसी शुष्क भाग पर रेत बिछा कर बनाया जाता है ताकि उसे अपनी इच्छानुसार एक स्थान से दूसरे पर स्थानान्तरित किया जा सके।

चुल्ली को अधिक-से-अधिक तीन और कम-से-कम दो आँखें होती हैं। महिलाएं एक चुल्ली को तैयार करने के लिए लगभग एक सप्ताह लगा देती हैं। अर्थात् इसे बनाने के लिए भले ही एक या दो दिन लग जाएं पर इसके सूखने और लीपा-पोती आदि करके सौन्दर्य युक्त करने के लिए लगभग एक सप्ताह लग ही जाता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रत्येक महिला चुल्ल नहीं बना सकती है। केवल कुशल महिला ही इसे बना सकती है।

चुल्ल का आगे वाला मुख भाग पर्याप्त खुला होता है ताकि उस में ईंधन डालने और फिर उन्हें आग से प्रज्ज्वलित करने के लिए आसानी हो जाए । इतना ही नहीं इसी काम की कलात्मक बनावट के कारण चुल्ल के मध्य तथा अन्तिम

(1) डुग्गर में इसे चुह्ल्ल कह कर पुकारते हैं।

अक्खों[1] में आग की लपटें पहुंचकर तीनों भागों (अक्खों) पर रखे हुए भात और दाल तथा सब्जी आदि के पतीलों में सभी एक साथ पकने लगते हैं। इन आँखों (अक्खों) पर पतीले आदि रखते समय आग की लपटों के द्वारा यथावत् अपना ताप बनाए रखने के लिए तीन-तीन मिट्टी के उभार बनाए होते हैं, जिन्हें कुक्करे कहते हैं।

(ii) अंगीठी[2]:-

यह तीन प्रकार की बनाई जाती है। सर्दियों के दिनों में गाँव के लोग अपने घरों के किसी बड़े कमरे या बरामदे में उपयुक्त स्थानों पर चौकोण आकार की लगभग एक फुट चौड़ी तथा इतनी ही लम्बी एवं आधा-आधा फुट गहरी अंगीठियां बना कर उन्हें लीपा-पोती करके इन में आग जलाते हैं और इनके ईंधन वाले भाग को छोड़ कर शेष तीन स्थानों में बैठकर आग सेंकते हैं तथा कभी-कभी इन के मध्य में लोहे के त्रिकोणाकार उपकरणों को रखकर उन पर तवे रखने के बाद उन पर रोटियां भी बनाते हैं और शीघ्र बनने वाली दालें आदि सब्जी भी पकाते हैं।

इसका दूसरा प्रकार है जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित किया जा सकता है, यद्यपि पर्याप्त ठोस होने के कारण बच्चे तथा कमजोर व्यक्ति नहीं उठा सकते हैं। इसे बनाने के लिए महिलाओं को पर्याप्त परिश्रम करना पड़ता है।

इस में आग जलाकर चारों ओर बैठकर लोग आग सेंकते हैं।

अंगीठी का तीसरा भाग अंगीठू (ङीठू) कहलाता है जो आकार में इतना छोटा होता है कि इसे सर्दियों में लोग कांगड़ी के अभाव में इसमें आग डालकर अपनी गोदी में तथा बिस्तरे में रखकर अपने शरीर को गर्म करते हैं:-

(iii) तुलसी का चौंतरा:- डुग्गर के गाँवों में महिलाएं अपने-अपने आंगणों में तुलसी के पौधे लगाने के लिए विधि से तुलसी स्थानों का निर्माण करतीं हैं जिन्हें बनाने के लिए शुद्ध मिट्टी और पानी का प्रयोग करतीं हैं। इन्हें बनाने के लिए जहां उन्हें अपनी श्रद्धानुसार अपनी कला का प्रदर्शन भी करना पड़ता है। कई महिलाएं इसे गोलाकार में बनाती हैं जबकि कई चौकोन आकार

1. डुग्गर संमाग में चुल्ली की आँख को अक्खा या ऐंद कहा जाता है।

2. डुग्गर संभाग में इसका इसका उच्चारण या रूप ङीठी है।

की बनातीं हैं।

कार्तिक -मार्गशीर्ष मास में हरि प्रबोधिनी एकादश के दिन महिलाएं तुलसी का व्रत करतीं हैं। उस एकादशी के दिन महिलाएं अपनी-अपनी तुलसियों को अनेक रंगों से चित्रित करके उन्हें अच्छी प्रकार से सजाती हैं।

(iv) कोहली[1]:-

गाँवों में अपने घरों में चावल, गेहूँ, आटा तथा दालें आदि अनाज जमा करने के लिए महिलाएं मिट्टी की कोहलियों का निर्माण करती हैं। ये कई प्रकार की होती हैं अर्थात् बड़ी, छोटी, एकले भाग वाली तथा दो-दो भाग वाली। इनका मुख साधारण आकार का होता है, जबकि निचला भाग क्रमश: चौड़ाई लिए हुए तथा चौकोण आकार का होता है

(v) तंदूर:-

घरेलू महिलाएं दो प्रकार के तंदूरों का निर्माण करती हैं- (i) वह जो भूमि में ही व्यवस्थित किया जाता है, और इसीलिए वहां से स्थानान्तरित नहीं किया जा सकता तथा (ii) वह जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर रखकर काम में ले जाया जा सकता है और फिर वहां से भी यथेष्ट स्थान पर ले जाकर रखा जा सकता है। इसमें प्रयुक्त मिट्टी को भी अच्छी प्रकार सुधारना पड़ता है, जबकि दूसरी श्रेणी वाले तंदूर को घड़ने के लिए अपेक्षाकृत परिश्रम करना पड़ता है क्योंकि यह इतना ठोस नहीं होता है, इसीलिए इसका चिर-स्थायी रहना असम्भव है।

बाल-हट्टी (दुकान):-

गाँव की वरिष्ठ महिलाएं (विशेषकर दादी माँ और नानी के कोटि में आने वाली) अपने पोतों एवं नातियों के मनोरंजन तथा शुभ शकुन की भावना से दीपावली के त्योहार के अवसर पर मिट्टी की एक फुट ऊँचे तथा लगभग डेढ़ फुट चौड़ाई के आकार की दुकानें बना देती हैं। दीपावली के त्योहार से कई दिन पहले वे महिलाएं साफ-सुथरी मिट्टी को मल-मलकर सुधारती हैं तथा उनमें बारीक भूसा मिला कर तथा उसमें पानी मिलाकर उन दुकानों को बड़े कलात्मक ढंग से बनाती हैं। फिर उन्हें सुखाकर उन्हें चूने से सफेद करके उन पर कई रंगों

नोट- 1. कोहलियों के बहुत बड़े आकार को गाँव में कोहल कहते हैं। इनमें मनों के परिमान में अनाजा भरा जा सकता है।

से बेलें, पौधे और फूल चित्रित करतीं हैं। ठीक दीपावली वाले दिन सायंकाल के समय उन्हें यथास्थान रखकर तथा उनके आगे चटाई बिछाकर उन्हें दीपों से प्रकाशित करके उनके भीतर यथा प्राप्त तथा यथा सम्भव मिठाई और पकवान रखतीं हैं। तदुपरान्त वहां बच्चों को बिठाकर घर के बड़े लोगों को कहती कि घरों में दीपमाला करके तथा महालक्ष्मी पूजन करने के बाद उन बच्चों की दुकानों पर जाकर बच्चों को कुछ रुपये दो और उनसे मिठाई खरीदो। तदनुसार घरों के सभी बड़ी आयु के लोग वैसा ही करते हैं। इस प्रकार इससे गाँवों में बच्चों का मनोरंजन भी होता है तथा उन्हें जीवन में आत्मनिर्भर होने की प्रेरणा भी मिलती है।

गेही:-

गाँवों के कच्चे घरों में गेहिओं की महत्त्वपूर्ण भूमि ा होती है। यदि यह कहा जाए कि गाँवों के कच्चे घरों में गेहियों के बिना गृहस्थी का विशेषकर रसोई घर का समान सम्भालने के लिए अति कठिनाई का सामना करना पड़ता है तो उचित ही है। ये गेहियां रसोईघर या कमरे में चुल्लिओं या चूल्हों के ऊपर लगभग दो फुट दीवार पर बनाई जाती हैं। इनके तीन से छ: तक खाने या भाग होते हैं। शहरों एवं बड़े नगरों में रसोईघरों में जो लकड़ी की छोटी-छोटी अलमारियां बनाई जाती हैं गांवों में गेहियां उन्हीं का स्थानापन्न हैं।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि डुग्गर संभाग में मिट्टी के शिल्प के विस्तृत आयाम में कितना बहुरूपी भण्डार समाया हुआ है। यहां यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि जहां कुम्हारों की शिल्प कला से प्रस्तुत विविध बर्तन आदि वस्तुएं आवे में पकाई होने के कारण कई वर्षों तक भी सुरक्षित रखी जा सकतीं हैं, जहाँ तक कि कई शताब्दियों तक भी रह सकतीं हैं, कई पुराने खण्डहरों की खुदाई करने पर प्राप्त टेराकोटा इस बात का प्रमाण है। इसके ठीक गाँवों की महिलाओं की शिल्पकला से प्रसूत - अल्पकाल तक ही स्थायी रह सकती हैं। इसका कारण है उनको पकाने का साधन न होने के कारण वे कच्ची ही रह जाती हैं। जब उन पर पानी पड़ता है तो उनके टूटने की सम्भावना हो जाती है, तथा जोर से ठोंकरें लगने पर भी वे टूट सकती हैं। उनके कच्चा रहने का या न पका सकने का कारण मिट्टी में भूसे की मिलावट तथा साधारण मिट्टी का प्रयोग है, परन्तु जहां तक महिलाओं की शिल्पकला की कुशलता का प्रश्न है उन पर किसी प्रकार की आशंका नहीं की जा सकती। वे भी मिट्टी की शिल्पकला

में अपने चमत्कार दिखाने में निस्सन्देह अति प्रवीण हैं। यहां एक बात यह भी विचारणीय है कि जहां कुम्हार लोग अपने कई उपकरणों की सहायता से अपनी शिल्पकला केवल गुड्डनू तथा खुरपी की सहायता से घरेलू उपयोग के लिए मिट्टी को अपनी कला के द्वारा अनेक रूप देकर बहुविध सामान तैयार कर लेते हैं।

ooo